Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 5, April-2019, ISSN 2230-7540

स्त्रीवादी चेतना: अर्थ, अभिप्राय एवं परिभाषांकन

Mamta Rani[1]* Dr. Sumitra Chaudhary[2]

[1] Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Associate Professor, Department of Hindi, OPJS University, Churu, Rajasthan

सारांश – *चित्रा मुद्गल हिन्दी जगत की प्रख्यात लेखिका एवं कथाकार है। आपको नारी मन की संवेदनाओं और उसके मनोविज्ञान की प्रवक्ता के रूप में माना जाता है। इनके कथा साहित्य में विलक्षणता, खुलापन, अनौपचारिकता सर्वत्र परिलक्षित होता है। नारी होने के कारण इनकी रचनाओं में प्रमुख रूप से नारी जीवन एवं समस्याओं का चित्रण मिलता है। चित्रा मुद्गल ने विभिन्न विधाओं में लेखन किया है, विधा कोई भी हो हर विधा के माध्यम से वह 'नारी' की नयी छवि को पाठक के सामने प्रस्तुत करती है। इनकी रचनाओं में नारी स्वतन्त्र एवं अपनी अस्मिता की तलाश करती हुई नजर आती है। स्त्री के साध्य और दुर्बलताओं को चित्रित करते हुए इन लेखिकाओं ने वास्तविक धरातल के विविध रूप प्रस्तुत किये। अनास्था और असन्तोष से उत्पन्न प्रतिरोध के नए स्वर दोनो लेखिकाओं की रचनात्मक पहचान है।*

स्त्री आधारित विषयों पर वर्षों से चिन्तन-मनन हो रहा है। फिर भी यह अपने-आप में एक नया विषय है। इसके विविध पहलुओं पर नव्य दृष्टिकोण से विमर्श की आवश्यकता है। अद्यतन साहित्य में स्त्री और स्त्रीवाद केन्द्र में है। अब तक अनेक आलोचकों ने स्त्री को केन्द्र में रखकर अपनी आलोचना की है, परन्तु उसका आधार स्त्री जीवन का कोई एक पक्ष ही रहा है।

----------X----------

प्रस्तावना

स्त्री और स्त्री जीवन ने वैदिक काल से आधुनिक और उत्तर-आधुनिक काल तक अनेक सोपानों का सफर किया है। समाज में स्त्री जीवन ने उतार-चढाव के सुखद-दुखद स्थितियों का स्वाद लिया है। स्त्री शब्द की व्युत्पति, स्वरूप एवं महत्ता की व्याख्या करते हुए पतंजलि ने लिखा है- "शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन सबका समुच्य स्त्री है। स्त्री शब्द, स्त्री स्पर्श, स्त्री रूप, स्त्री रस इस लीलामयी जगत में अपनी अनिवर्चनीय सुषमा और अनुपम आकर्षण शक्ति के लिए सुविदित है।"

स्त्री के महत्त्व को वैदिक काल में सबने स्वीकार किया। वेद-पुराणों में सम्माननीय स्थान प्राप्त कर स्त्री, पुरूषों के सदृश्य पूजनीय एवं अनुकरणीय थी। पंडित श्रीराम आचार्य ने पुराणों के संदर्भ में स्त्री के महत्त्व को उदघाटित किया है- "वेद पुराणों में नारियों के लिए 'ग्ना' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द प्राय: देव पत्नियों के लिए हुआ। ब्राहमण ग्रंथ में यह शब्द मानवीन्ति के लिए प्रयुक्त हुआ, जिसकी यास्क ने व्याख्या की है- 'ग्ना गच्छन्ति एना;' पुरूष ही उसके पास जाते हैं, सम्मान पूर्वक बातें करते हैं, उसे पुरूष अनुनय की आवश्यकता नहीं पडती।"

स्त्री वैदिक काल से ही समाज में सम्मानित जीवन व्यतीत करती थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे महत्त्व दिया जाता था। अथर्ववेद के अनुसार- "विद्या का आदर्श सरस्वती में, धन का लक्ष्मी में, शक्ति दुर्गा में, इतना ही नहीं सर्वव्यापी ईश्वर को भी जगत जननी के नाम से सुशोभित किया गया है।" वेद-पुराण एवं धार्मिक ग्रंथों में स्त्री को उच्च स्थान दिये जाने के उपरान्त भी मध्य काल में स्त्री के जीवन में मूलभूत परिवर्तन आया। स्त्री शोभा एवं भोग-विलास की वस्तु बनकर रह गयी। अन्यान्य तरीके से उसका शोषण किया जाने लगा। स्त्री नरकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हो गयी। भला हो राजाराम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों का जिन्होंने नारी उत्थान का संकल्प लिया और कर दिखाया। पश्चिमी देशों में स्त्री सुधार और स्त्री-उत्थान के महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। परन्तु भारतीय संदर्भ में स्त्री के संबंध में चुनौतियां अलग तरह की है। अपने अधिकार एवं हक के लिए संघर्ष भी करना है, तो अपनी सभ्यता-संस्कृति, पारिवारिक एवं सामाजिक यहां तक कि व्यक्तिगत मूल्यों को जीवंत रखने की परम्परा का निर्वहन करते हुए। स्वतत्रं ता पूर्व संघर्षरत भारतीय जनमानस में स्त्री का यह रूप देखा जा सकता है। जहां वह स्वतत्रं ता के संघर्ष

को स्वर दे रही है, परन्तु एक मर्यादा में। घर के अन्दर रहकर अपनी लेखनी से इस आवाज को बुलंद किया।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत एवं जागरूक हुई है। परिवार, समाज, राजनीति, आर्थिक एवं धार्मिक सभी क्षेत्रों में उसकी क्रियाशीलता बढ़ी है। वह अपने कत्तव्यों के प्रति सजग है, परन्तु शोषित होकर नहीं, बल्कि जागरूक होकर। जिस पितृसत्तात्मक सत्ता द्वारा वह नियंत्रित होती रही हैं, उसके प्रति वह अधिक सतर्क हुई है। राजनीति ऐसा क्षेत्र है, जिसके द्वारा सबको अपने लिए संघर्ष करने का एक मार्ग मिल जाता है, स्त्री-वर्ग इस रहस्य को भलि-भांति जान गया है। यही कारण है कि आजादी के बाद ही इस दिशा मे स्त्री की क्रियाशीलता अधिक बढ़ गयी। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी इसके सशक्त उदाहरण थीं। जो भारत ही नहीं, अपितु विश्व की नेत्री बनने में सक्षम थीं। आज के संदर्भ में सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, ममता बनर्जी, प्रतिभा पाल्लि बूंदा कारात आदि का नाम लिया जा सकता है। मायावती भारतीय राजनीति में एक ऐसा नाम है, जो दलित एवं गरीब परिवार से हो कर भी भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है। समकालीन समय उत्तर आधुनिकता का है। इसमें स्त्रीवाद के स्वरूप को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिल रहा है। यहां स्त्री नये-नये रूपों में प्रकट हो रही है। यदि कहा जाय कि उत्तर-आधुनिकता में स्त्री का एक नवीन अवतार हुआ है तो गलत न होगा। उत्तर-आधुनिकता में स्त्रीवाद एक जीवन-दर्शन के रूप में आया है और अपना-प्रचार कर रहा है। पाश्चात्य के साथ-साथ भारतीय साहित्य में इसे-प्रफुल्लित होने का पर्याप्त अवसर मिला है। हिन्दी साहित्य भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं है। उत्तर-अधुनिकता में 'स्त्रीवाद' का स्वरूप क्या है? इस पर ओम प्रकाश शर्मा लिखते हैं-

"उत्तर-आधुनिकता की एक प्रवृत्ति 'स्त्रीवाद' है। दारिदा ने पाठ में अनुपस्थिति की तलाश की बात कही है। परम्परागत साहित्य में स्त्री का स्वर दबा तथा मर्द लेखन की स्थापना मिलती है। इस लिए स्त्रीवाद एक नये पाठ की वकालत करता है। पाश्चात्य स्त्रीवाद का हिन्दी साहित्य पर जाने-अनजाने प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार उत्तर-आधुनिक चिंतन में स्त्रीवादी विचारधारा को नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। पश्चिमी स्त्रीवाद समझने की चीज है, ग्रहण करने की चीज नहीं।"[1]

साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावादी आलोचना के साथ ही विखण्डनवादी आलोचना भी आगे बढ़ी है। इसमें 'स्त्रीवाद' को केन्द्र में रखकर स्त्री शोषण, स्त्री मुक्ति, स्त्री अधिकार, स्त्री-पुरूष के आपसी भेद, आदि बिन्दुओं को उद्घाटित किया जा रहा है। अपनी सैद्धान्तिक मान्याताओं के अनुरूप विखण्डनवाद 'पाठ' को केन्द्र में रखता है। 'स्त्रीवाद' में वह स्त्री शरीर को केन्द्र में रखकर इस विषय पर अपनी मान्यताओं एवं धारणाओं को उद्घाटित करता है। इस संदर्भ में सत्यदेव मिश्र का मानना है कि-

"किसी भी पाठ को औरत की तरह पढ़ना, स्त्रीवाद समीक्षा का केन्द्र बिन्दू है। विखण्डन वाद औरतों के लिए लिंग भेदी दमन को सामने लाता है। अब तक समीक्षा मर्दवादी था। समीक्षा में अब तक पुरूषों की स्थापना का प्रयास रहा था अब स्त्री की स्थापना का प्रयास होने लगा है।"[2]

निश्चित रूप से स्त्री और स्त्रीवादी चेतना पर आरंभ से लेकर अब तक। वैदिक काल से लेकर उत्तर-आधुनिक काल तक। पाश्चात्य से लेकर प्राच्य तक। सभी बिन्दुओं पर गहना से अध्ययन किया जाय, विवेचन-विश्लेषण किया जाय तो अन्ततः निष्कर्ष निकलता है कि स्त्रीवादी चेतना अपने आप में एक नया विषय है। यदि स्त्री की पूर्व एवं वर्तमान स्थिति, उत्थान-पतन आदि विषयों को केन्द्र में रखकर विचार-विमर्श किया जाए तो निश्चित रूप से स्त्रीवादी चेतना अपने आप में एक नव्य विमर्श है।

स्त्रीवादी चेतना: अर्थ, अभिप्राय एवं परिभाषांकन

स्त्रीवादी चेतना शब्द स्त्री, वाद और चेतना के मिलने से हुआ है। जिसका व्युत्पत्यार्थ इस प्रकार है-

स्त्री: व्युत्पति एवं अर्थ

स्त्री शब्द नारी का पर्यायवाची रूप है- नृ+अञ - डीन = स्त्री (1) नर का स्त्री रूप (2) विशेषत: वह स्त्री जिसमें लज्जा, सेवा, श्रद्धा आदि गुणों की प्रधानता हो (3) युवती तथा वयस्क स्त्रियों की सामूहिक संज्ञा (4) धार्मिक क्षेत्र में तथा साधकों की परिभाषा में (क) प्रकृति (ख) माया (5) तीन गुरु वर्णों की एक संख्या।[1] अबला, वधु, प्रतीपदर्शिनी, वामा, वनिता, महिला।[2] स्त्री से भाव नारी के उस विविध रूप से है, जो लज्जा, श्रद्धा, सेवा आदि गुणों से युक्त होती है।

वाद:

व्युत्पति एवं अर्थ वाद- (पु०) वद् + घञ = बातचीत, वाणी शब्द वचन, कथन, वर्णन निरूपण, वाद विवाद शाक्तार्थ खण्डन मण्डन।[3] तर्क-वितर्क, बहस, तत्वाज्ञों द्वारा निश्चित तत्व या सिद्धान्त, मुकदमा[4] कुछ कहना या बोलना, दलिल, अफवाह किंमवदन्ति।[5] वाद से तात्पर्य उस वाद विवाद से है जिसके द्वारा किसी भी बिन्दु के पक्ष-विपक्ष दोनों पहलुओं का विश्लेषण कर निष्कर्ष पर पहुँचा जाए।

चेतना: व्युत्पति एवं अर्थ

चेतना शब्द चेत + ना (प्रत्य.) से बना है। जिसका समान्य अर्थ- बुद्धि, मनोवृति, ज्ञानात्मक मनोवृति, स्मृति, सुधि, याद, चेतनता, चैतन्य, संज्ञा होश।[6] अन्तभविना, विवेक जागृति।[7] ध्यान देना समझना।[8] उपदेश देना, चेतावनी देना, सावधान करना।[9] चेतना से भाव मनुष्य की उस

मनोवृति से है, जिसके द्वारा वह सही गलत का निर्णय लेता है। अपने अधिकारों एवं कत्र्तव्यों के प्रति सजगता के साथ क्रियाशील रहता है।

चेतना की परिभाषा

चेतना ऐसी स्थिति है जिसको अलग-अलग रूपों में व्याख्यायित एवं परिभाषित किया गया हैं। अन्यान्य कोशों में इसकी लाक्षणिकता को परिभाषित किया गया है- इन परिभाषाओं को निम्नलिखित कोटियों में बांटा जा सकता है-

भाव परक परिभाषा- चेतना मनुष्य की भावात्मक स्थिति है। मानक हिन्दी कोश के अनुसार "चेतना मन की वह वृति या शक्ति है, जिससे जीव या प्राणी को आंतरिक घटनाओं (अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि) और तत्वों एवं बातों का अनुभव या मान होता है।"[1]

वैशिष्ट्यपरक परिभाषा

चेतना वह तत्व है जो सजीव एवं निर्जीव के बीच के अंतर को व्यक्त करता है।

विश्व हिन्दी कोश के अनुसार "चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्यों की जीवन-क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते हैं। चेतना स्वयं को और अपने आस-पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों को मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।"[2]

मूल्यांकन परक परिभाषा- चेतना द्वारा मनुष्य अपने कार्यों का मूल्यांकन करता है। मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार

"चेतना वह आंतरिक चेतना है जिसके द्वारा कर्ता को कर्म के उचित या अनुचित शुभ या अशुभ होने का बोध होता है या जो उसे शुभ करने के लिए उन्नत करती है।"[3]

स्मरण परक परिभाषा

चेतना पूर्व स्थितियों को स्मरण करने की शक्ति है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ अमरिकन के अनुसार "हमारे मन में बहुत कुछ ऐसा चल रहा होता है, जिसके बारे में हमें स्वयं को कोई जानकारी ही नहीं होती। एक व्यक्ति अपने विभिन्न-विभिन्न अनुभवों को याद कर सकता है, यह चेतना है।"[4]

मनोविज्ञानपरक परिभाषा

चेतना का अपना मनोवैज्ञानिक महत्व है इसके अन्तर्गत व्यक्ति के मन: स्थिति का अध्ययन किया जाता है। अंग्रेजी दार्शनिक जॉन लॉक की मनोवैज्ञानिक रूप से परिभाषा इस प्रकार है "चेतना से अभिप्राय है कि वो सब कुछ जो कुछ एक व्यक्ति के मन में होता है।"[5]

साहित्यिक समीक्षा

डॉ. अर्चना (2013) मिश्राः चित्रा साहित्य की सभी विधाओं में स्त्री साहित्यकारों का योगदान निरन्तर बढ़ रहा है। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में तो कुछ ऐसी स्त्री रचनाकार आई हैं, जिनके साहित्य पर निरन्तर चर्चा-परिचर्चा एवं संगोष्ठियों का आयोजन हो रहा है, परन्तु आलोचना के क्षेत्र में इनका योगदान अभी कम है। इस संदर्भ में ओम प्रकाश शर्मा लिखते हैं- "भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक नारी होने के नाते साहित्यकारों ने स्त्री जीवन के अतं र्बाहाय जीवनानुभवों को प्रस्तुत किया। वहीं नारी मन की अटल गहराईयों में उतर कर उसका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अंकन भी किया है। नारीत्व की पुरुष मर्यादित सीमाओं की कहानी, उपन्यास, कविता आदि के माध्यम से अतिक्रमण कर नये धरातल की नींव रखी है। अपने स्त्रीत्व के प्रति जागरूक रचनाकार को निश्चय ही यह उसके आत्म सम्मान के खिलाफ लगता होगा। अतः उम्मीद की जानी चाहिए कि आलोचना के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी।"

आज स्त्री विमर्श पर अनेक सवाल उठाए जा रहे हैं।

चित्रा मुद्गलः (2014) पुरुष समर्थकों को इस बात की चिन्ता है कि कहीं स्त्री विमर्श के बहाने हमारा अधिकार तो नहीं छीना जाएगा, उनकी यह चिन्ता निरर्थक है, क्यों कि स्त्री विमर्श के बहाने स्त्री अपने स्वत्व को पाना चाहती है। उसे किसी की हार जीत से कोई मतलब नहीं है। वह तो बस समाज में सम्मान्ति जीवन जीना चाहती है। इस संदर्भ में राकेश कुमार -प्रसिद्ध लेखिका महादेवी वर्मा की उक्तियों का उल्लेख करते हैं- "हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए, न किसी पर प्रभुता, केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है। परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी।"[2] अद्यतन परिवेश में स्त्री चिन्तन और लेखन में अत्यधिक परिवर्तन आया है। स्त्री लेखिकाएँ पुरानी परम्पराओं से निकल कर आधुनिक यथार्थ को अपने साहित्य का विषय बना रही हैं। अनामिका का कहना है- "पहले जब स्त्रियाँ कलम उठाती भी थीं, उनमें वह होता था जिसे मनोवैज्ञानिक 'पुअर लिजा काप्लेक्स' कहते हैं- बेचारी दुःख की मारी वाला भाव। आधुनिक स्त्री लेखन आत्म-विश्लेषणपरक है, और उसके 'मैं' भाव का विस्तार इतना बढ़ गया है कि 'सारी दुनिया' समा गई है, खुद से अकेले में रुबरु हो कर पूछती तो है- प्रेम गली की तरह मेरी अस्मिता कहीं इतनी 'सांकरी' तो नहीं हुई जाती 'जामै में दुई न समाहि"।[3]

चित्रा मुद्गल परिचय एवं व्यक्तित्व

स्नेह मोहनीषः (2015) मानव का सबसे बड़ा आकर्षण केन्द्र मानव ही हैं और कारण यह है कि उसकी सभी अभिव्यक्तियाँ और कार्य मानव से संबंधित हैं। समूचा साहित्य मानवीयभावों,अनुभवो और संचारीभावों अर्थात भावों,मनोभावों और मनोविकारों से प्रभावित होता हैं। साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ साहित्यकार का व्यक्तित्व भी उभरकर हमारे सामने आ जाता हैं। साहित्यकार अपनी प्रगति में इस प्रकार व्याप्त रहता है- जैसे षरीर में आत्मा और नभमंडल में वायु। यही कारण हैं कि उसके व्यक्तित्व के रूप-प्रतिरूप साहित्यकार द्वारा रचित साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे रहते हैं। वस्तुतः कलाकार का व्यक्तित्व,उसका परिचय उसका विष्वास और उसकी प्रतिबद्धता सभी कुछ उसकी कला होती हैं। साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके अन्तःभाव-विचारों की संप्रेषणीयता का प्रत्यक्ष आधार होता हैं और मुखर व्यक्तित्व स्वतः ही अन्तस के गहन गंभीर विचारधारा का नि दर्शन करा देता हैं। अतः व्यक्तित्व दर्शन से साहित्यकार के भाव-विचार,ज्ञान-विज्ञान और उसके वार्तालाप से उसके दार्शनिक ज्ञान का जीवनवृत उसके व्यक्तित्व निर्माण का एक बाह्य उपादान होता है और जीवन दर्शन अभ्यन्तर उपादान। वैसे तो किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्रण करना लगभग असंभव ही हैं। फिर भी प्रतिभाषाली व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्रण करना तो असंभव ही हैं। फिर भी कार्य संपन्न करने के प्रयास तो किये जाते है और प्रयास करना ही जीवन धर्म हैं। प्रतिभा जन्मजात अथवा अर्जित हो सकती हैं परंतु आकर्षक और रोचक शब्दों के रूप में व्यक्त करने की क्षमता बिना अध्ययन,मनन,चिंतन और अध्यवसाय के साथ-साथ लगन के सुयोग के बिना संभव नहीं हो सकती हैं।

करुणाशंकर उपध्यायः (2015) इस दृष्टि से आलोच्य साहित्यकत्र्री चित्रा मुद्गल के जीवन के तथ्यपरक पहलुओं को उदघाटन करने का मेरा यह छोटा प्रयास हैं। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कथा लेखिका चित्रा मुद्गल ने अपनी रचना और रचनाधर्म व्यक्तित्व से भारत के साथ-साथ विष्व स्तर पर अपनी अलग पहचान बनाई हैं। जहाँ एक ओर इनके व्यक्त्वि में भारतीयता समाज, संस्कृति और कलात्मक अभिव्यक्ति का अदभूत संयोग हुआ हैं। वही दूसरी ओर अनके साहित्य में अभाव ग्रस्त जीवन व्यतीत करने वाले मजदूरों के प्रति सविषेष सहानुभूति हैं। नृत्य में अभिरूचि होने के कारण इनके व्यक्तित्व में अधिक विचार आया है। इनके साहित्य की महत्ता और उपयोगिता उनके साहित्य पर प्राप्त अनेकानेक मान-सम्मान और पुरस्कारों से लगाई जा सकती हैं। कुप्रथाओं,कुप्रवृत्तियों से ग्रस्त एवं भ्रष्ट समाज से संघर्ष करती हुई चित्रा मुद्गल ने अपने साहित्य में सदैव भारतीय संस्कृतिक और मान्यताओं को ही महत्व दिया हैं। इनके कथा साहित्य का सृजन उस यथार्थ भूमि पर हुआ हैं। जिस पर चलते हुए लेखिका को अनेक रूपों में संघर्ष करना पडा हैं। चित्रा मुद्गल यथार्थोन्मुखी लेखिका के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की चिन्तक भी हैं। इसकी झलक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों में झलकती हैं। वे अत्यंत संवेदनषील लेखिका हैं।

चित्रा मुद्गल का व्यक्तित्वः-

कल्पना पाटीलः (2016) मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण परिस्थितियों के अनुरूप होता हैं। किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का अध्ययन करना आवश्यक होता हैं। क्योंकि व्यक्तित्व के अनुरूप ही वह साहित्य का निर्माण करता हैं। क्योंकि साहित्य सृजन के लिए प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को आवश्यक माना जाता हैं।

श्रीनिवास श्रीकान्तः यथार्थ किसी साहित्यकार के साहित्य का मूल्यांकन,व्याख्या के लिए उसके जीवन से परिचित होना अत्यंत आवश्यक हैं। क्योंकि वह अपने जीवन के किसी पक्ष को साहित्य में उद्घाटित करता हैं। व्यक्तित्व से तात्पर्य है जन्म, शिक्षा, परिवार उनके स्वभाव आदि से होता हैं। चित्राजी के व्यक्तित्व को उजागर करते हुए फिल्म जगत के लेखक एवं पत्रकार शब्दकुमार ने कहा था कि- "चित्रा को जानना सहज हैं क्योंकि उनकी सोच और आचरण में ऐक्य हैं। घर के सदस्यों की नाराजगी के बावजूद झाड़ु लगानेवाली जमादारनी को उसी गिलास से पानी पिलाती है, जिससे स्वयं पानी पीती हैं।"[1] चित्राजी के व्यक्तित्व को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं।

सम्मान एवं पुरस्कार

चित्रा मृद्गल की सतत सक्रिया सारस्वत साधना पर उन्हें आंतरराष्ट्रीय और देश के अनेकानेक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सन्मानों पुरस्कारों से नवाजा गया हैं।

1. प्रेक्षा सन्मान 1986 राष्ट्रीय एकता एवं सद्भावना के लिए।
2. साहित्यिक कृति पुरस्कार इस हमाम में कहानी संकलन के लिए हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा - 1986-87
3. 'बाल साहित्य पुरस्कार, जंगल का राजा' बाल कथा संकलन के लिए हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा - 1986-87।
4. राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरस्कार ग्यारह लंबी कहानियाँ।
5. फणीश्वरनाथ 'रेणु साहित्य पुरस्कार' एक जमीन अपनी उपन्यास के लिए ग्रामीण विकास संगठन बंबई द्वारा -1994।

www.ignited.in

6. साहित्यकार सम्मान हिन्दी अकादमी,दिल्ली द्वारा - 1994।

7. सहस्त्राब्दी का पहला आंतर्राष्ट्रीय 'इंदु शर्मा कथा सम्मान (युके) 'आवां' के लिए।

8. सामाजिक कार्यो के लिए 'विदुला' सम्मान (विकास फाउन्डेशन 2001)

9. वीर सिंह देव सम्मान मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी (2001)

10. साहित्य भूषण सम्मान उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 2000

11. साहित्य कीर्ति सम्मान हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा -2000

12. वीर सिंह जू देव सम्मान 'आवां' उपन्यास के लिए- 2002

13. प्रतिष्ठित 'व्यास सम्मान' के.के.बिडला फाउन्डेशन द्वारा 2003

14. चक्रधर सम्मान उपन्यास 'गिलिगडु' मध्यप्रदेश द्वारा 2005

15. गोएन्का सम्मान के लिए मुंबई 2005

16. शिखर सम्मान हिमांचल प्रदेश द्वारा 2007

17. वर्ष 2007 मैं देश के चौदह प्रमुख महिलाओं में से एक चित्रा मुद्गल को भी कल्पना चावला एवार्ड से सम्मानित किया गया।

निष्कर्ष

कथा साहित्य में स्त्री चेतना के विकास के साथ-साथ उसके स्वरूप और प्रयास में परिवर्तन आया है। जहाँ कथा के स्वरूप में स्त्री चेतना का विकास कर समाजसुधारकों ने चेतना के विकास में तमाम प्रयास किये वहीं स्त्री ने भी लेखन से लेकर अपनी अस्मिता तक की रक्षा की। पुरूषों के साथ समानता का दृष्टिकोण बनाते हुए खुद को 'व्यक्ति' के रूप में स्थापित किया। वह कोई भी सीमा हो खुद को आगे बढ़ाने में सक्षम और विपरीत परिस्थितियों से लड़ने का हौसला रखते हुए लेखन से लेकर चेतना के नये आयाम का निर्माण किया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. अर्चना मिश्राःचित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में चिंतन,पृ-18

2. चित्रा मुद्गलः'मेरे साक्षात्कार',पृ-177

3. चित्रामुद्गलः 'जिनावर' भूमिका पृ'7

4. चित्रा मुद्गलः 'लक्कड़बघ्घा' ,पृ-7'

5. चित्रा मुद्गलः'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है',पृ-4

6. चित्रा मुद्गलः 'लक्कड़बघ्घा' ,पृ-10

7. चित्रा मुद्गलः 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है',पृ-8

8. स्नेह मोहनीषः जूही के फूलों सी हँसी वाली सोनपरी लोकायतः 31 जुलाई 2007 ,पृ.38

9. करुणाशंकर उपध्यायः 'आवां' विमर्श,पृ-268

10. कल्पना पाटीलः चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य ,पृ-20

11. चित्रा मुद्गल के साथ गोरखनाथ तिवारी की भेटवार्ता, संकल्प संपादक ,पृ-89

12. उर्मिला शिरीश: में साक्षात्कार,पृ-139

Corresponding Author

Mamta Rani*

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan